कालिदास की कृतियों में प्राकृतिक सौन्दर्य

–डॉ. लज्जा पन्त (भट्ट)
(सीनियर असिस्टैण्ट प्रोफेसर),संस्कृतविभाग,
कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल उत्तराखण्ड

महाकवि कालिदास प्रकृतिप्रेमी कवि के रूप में जाने जाते हैं। भारतीय काव्य परम्परा में उनका प्रकृति–संरक्षण अथवा प्रकृति के प्रति प्रेम अद्वितीय है। अंतःप्रकृति के साथ–साथ वे बाह्यप्रकृति के भी सर्मज्ञ हैं। प्रकृति के साथ उनके हृदय का पूर्ण तादात्म्य हुआ है। यह सत्य है कि उनसे पूर्व आदिकवि ने प्रकृति के शुद्ध एवं सहज स्वरूप का यथेष्ट अंकन किया है, किन्तु कालिदास की भाँति वे अपने आप को उसकी रमणीयता में पूर्णतः लीन नहीं कर पाये हैं। उनके प्रकृतिचित्रण में प्रकृति का यथार्थ रूप सुरक्षित है, उनके विस्तृत वर्णनों में सौन्दर्य व्यंजना भी है, किन्तु कालिदास की प्रकृति अपेक्षाकृत अधिक अलंकृत है, साथ ही वैदिककवि जैसा प्रकृति के प्रति सहज उल्लास, एवं वाल्मीकि जैसी हार्दिकता एवं सहजता भी उनमें उपलब्ध होती है।

वाल्मीकि की भाँति कालिदास ने भी अपनी कृतियों में प्रकृति के उदात्त स्वरूप का मुक्तकण्ठ से गुणगान किया है तथा प्रतिपग उसे संरक्षण भी प्रदान किया है। राजा से लेकर प्रजा तक सर्वत्र सभी का प्रकृति के साथ अत्यन्त मंजुल समन्वय प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास जी की कृतियों में प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण किंवा लोकोत्तर एवं लोक कल्याणकारी क्रियाएँ प्रकृति के सुरम्य वातावरण में संघटित अथवा सम्पन्न होती हैं। कालिदास की सभी कृतियों में 'आश्रम व्यवस्था' का अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये आश्रम ही गुरुकुल के रूप में प्रतिष्ठित हैं तथा इन आश्रमों को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त है। आश्रम के नियमों की अवहेलना करने का अधिकार राजाओं को भी नहीं प्राप्त है। यहाँ तक कि यदि किसी राजा–महाराजा ने भी इन आश्रमों की मर्यादा का उल्लंघन किया है, तो उसे भी उस अपराध के लिए दण्डित किया गया है।

महाकवि कालिदास जी प्रकृति–संरक्षण के प्रति इतने सचेष्ट हैं कि कुलपति महर्षि कण्व की धर्मपुत्री शकुन्तला भी अन्य आश्रम वासियों की भाँति वृक्षों के सेचन इत्यादिक क्रियाओं में संलग्न है। किम्बहुना शकुन्तला तो प्राकृतिक लता–वृक्षादि के प्रति इतनी सचेष्ट है कि वह जब तक लता–वृक्षादि को जल नहीं पिला लेती, तब तक वह स्वयं भी जल ग्रहण नहीं करती है। वृक्षों के पत्तों को तोड़ने की बात तो दूर रही, वह पतझड़ के बाद वृक्षों में नये पत्ते निकलने पर उत्सव मनाया करती थी।[1]

मेघदूतम्, ऋतुसंहारम् इत्यादि प्रायः सभी काव्यों एवं नाटकों में कालिदास जी ने पर्यावरण– संरक्षण के प्रति जिस महनीय दृष्टिकोण को अपनाया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय एवम् अनुकरणीय है। वस्तुतः महाकवि कालिदास जी के प्रकृतिवर्णन के मूल में पर्यावरण संरक्षण ही है। उनका प्रकृति चित्रण सूक्ष्म पर्यवेक्षण एवं स्वानुभूति पर आधारित है। उनकी बाह्य दृश्योद्घाटिनी अद्भुत क्षमता कतिपय प्राकृतिक दृश्यों एवम् उपकरणों के चित्रण तक ही सीमित नहीं रही है, अपितु प्रकृति के नाना रूपों के साथ–साथ उनके हृदय के रागात्मक सम्बन्ध की पूर्ण व्यंजना कराने वाली है।

कालिदास ने अपनी कृतियों में प्राकृतिक दृश्यों का जैसा सजीव एवं यथार्थ चित्रण किया है, मानव जीवन में प्रकृति के विविध रूपों के योग का जैसा मूल्यांकन किया है, वह इस सत्य का प्रमाण है कि कवि की दृष्टि में 'प्रकृति' काव्यरचना का साधन मात्र न होकर स्वयं साध्य भी है। प्रेयसी प्रकृति की प्रत्येक भावभंगिमा पर कवि ने अपना हृदय न्यौछावर कर दिया है, भले ही वह उसका सौम्य एवम् आकर्षक स्वरूप रहा हो, अथवा उद्वेगकारी भीषण रूप, किन्तु इतना अवश्य है कि प्रकृति का प्रशान्त एवं सुकुमार रूप कवि को अधिक प्रिय रहा है।

कवि प्रायः सौन्दर्यदर्शी होता है। उसका अन्तःसौन्दर्य ही वाणी के माध्यम से छलक कर जब बाहर आ जाता है, तो 'काव्य' के नाम से जाना जाता है। किम्बहुना उसका अन्तःसौन्दर्य जब कभी करुणा इत्यादि के द्वारा बाधित होता है, तब भी विभिन्न रसों से ओत–प्रोत होकर काव्य के रूप में प्रस्फुटित हो पड़ता है। महाकवि कालिदास तो साक्षत् सौन्दर्य के उपासक हैं। यही कारण है कि उनकी समस्त कृतियाँ सौन्दर्य से ओत–प्रोत हैं, विशेषतः **'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'** तो सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है। जर्मन विद्वान् गेटे ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' को लक्ष्य करके सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में जो टिप्पणी की है, वह सर्वथा उचित ही है।[2]

ज्ञातव्य है कि महाकवि कालिदास जी प्रकृति के कण–कण में सौन्दर्य का दर्शन करते हैं। उनकी सौन्दर्य दृष्टि सर्वथा विलक्षण है। उदाहरणतया **'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'** में शैवालविद्ध कमल, कलंकयुक्त चन्द्रमा तथा वल्कलवस्त्र–वेष्टित शकुन्तला में सौन्दर्य का दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है।[3] ऐसी सौन्दर्य की पवित्रता एवं मादकता, प्रेम की निश्छलता एवं विवशता, प्रकृतिजन्य सरलता एवं मुग्धता, ऋषिकुल की उदारता एवं दयालुता, महर्षि कण्व का आदर्श वात्सल्य, सर्वत्र रमणीय सौन्दर्य का समावेश महाकवि कालिदास की महनीय विशेषता है।

मानव जीवन में प्रकृति के अमूल्य योगदान को महाकवि ने भली–भाँति पहचाना है। उनकी दृष्टि में मानव जीवन और प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं और एक के अभाव में दूसरे की अपूर्णता का आभास होना सर्वथा स्वाभाविक ही है। कालिदास ने अपने ही ढंग से प्रकृति को मानव संवेदना का सहभागी बनाया है। उनकी प्रकृति मानवीय सत्ता से खण्डित करके नहीं देखी जा सकती। उनकी प्रत्येक कृति मानव और प्रकृति के अन्योन्याश्रित सम्बन्धों का निदर्शन है। आधुनिक समीक्षक इस सिद्धान्त से पूर्णतया सहमत हैं कि प्रकृति को काव्य का प्राणतत्त्व होना चाहिए। इस दृष्टि से कालिदास

मुख्यतः प्रकृति के परमोपासक कवि हैं। उनकी इसी विशेषता की ओर संकेत करते हुए श्री महर्षि अरविन्द ने कहा है– "Kalidasa with his fine artistic feelings, his vitality and warm humanism and profound sense of what true poetry must be, appears to have divined from the very begininng the true place of Nature in the poet's outlook."[4]

अतएव न केवल अपने काव्यों में, अपितु अपने नाटकों में भी कवि ने मानव और प्रकृति के घनिष्ठ सम्बन्ध की अत्यन्त सुन्दर व्यंजना की है। उनकी कृतियों में आए हुए प्रकृति चित्रण का अनुशीलन स्पष्ट कर देता है कि उन्होंने किस प्रकार क्रमशः प्रकृति के मार्मिक प्रभाव को हृदयंगम किया था। उनकी सबसे प्रारम्भिक कृति **'ऋतुसंहारम्'** में सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर विभिन्न ऋतुओं की स्वाभाविक प्राकृतिक विशेषताओं का सुन्दर अंकन हुआ है। वैसे तो उनके सभी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं, किन्तु ऋतुसंहारम् तो प्रकृतिचित्रण के निमित्त ही रचा गगया है। यद्यपि लक्षणग्रन्थों के अनुसार परवर्ती महाकाव्यों एवं नाटकों में भी यथास्थान ऋतुवर्णन आवश्यक माना गया है, परन्तु सम्पूर्ण संस्कृत–साहित्य में केवल ऋतुवर्णन के लिए लिखा गया प्रथम काव्य 'ऋतुसंहारम्' ही है।

प्राकृतिक सुषमा से समृद्ध भारतभूमि में जन्म ग्रहण करने वाले इस कवि की समस्त वृत्तियाँ आरम्भ से ही प्रकृति निरीक्षण में लग गई थीं और प्रकृति के प्रति उसके मन में एक श्रद्धामय स्वाभाविक प्रेम वर्तमान है। **'ऋतुसंहारम्'** का कवि प्रकृति का प्रेमी है, पर कामिनियों के प्रति वह अधिक अनुराग रखता है। अतः प्रकृति कुछ गौण हो गई है और अपनी वेश–भूषा, प्रसाधन एवं मनोविकार लेकर रमणी–प्रधान हो गई है, तथापि प्रकृति के प्रति कवि की सहानुभूति एवं प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण की उसकी अद्भुत क्षमता भी दर्शनीय हैं। कवि का प्रकृति के प्रति आकर्षण बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक नहीं, अपितु भावात्मक है। इसीलिए एक प्रेमी–दम्पति की ऋतु–विशेष में बदलती हुई भावनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में उसने प्रत्येक ऋतु की सहज शोभा का निरूपण किया है और बताया है कि मनुष्य की सुखात्मक अथवा दुःखात्मक भावनाओं पर प्रकृति का क्या प्रभाव पड़ता है। यद्यपि सम्पूर्ण काव्य उद्दीपन की भावना से ओत–प्रोत है, तथापि उसमें अनेक ऐसे स्थल हैं जिन्हें प्रकृति के शुद्ध स्वरूप का यथार्थ अंकन कह सकते हैं। प्रत्येक ऋतु के सुरम्य पक्ष का महाकवि ने अत्यन्त सूक्ष्मता से चित्रण किया है। प्रो. मैकडॉनल के शब्दों में प्रस्तुत कृति कालिदास के पर्यवेक्षण का सुन्दरतम निदर्शन है– "Perhaps no other work of Kalidas menifests so strikingly the poet's deep sympathy with nature, his keen powers of observation and his skill in depicting an Indian landscape in vivid and glowing colours.[5]

'कुमारसम्भवम्' में कवि ने दैवी विभूतियों एवं प्राकृतिक विभूतियों में साम्य स्थापित किया है। इस काव्य की घटनास्थली हिमालय है और प्रथम सर्ग में ही कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य के केन्द्र हिमालय की महिमा का गान किया है। इस काव्य में प्रकृति के भव्य स्वरूप का चित्रण करने का कवि को पर्याप्त अवकाश मिला है और हिमालय तथा गंगा के भव्य चित्रण के साथ–साथ उसने वन, पर्वत, नदी, उपत्यका, दिवस, रात्रि, ऋतु इत्यादि को लेकर प्रकृति के चिरन्तन एवं चिरनूतन सौन्दर्य का सूक्ष्म निरूपण किया है।

प्रकृति के प्रति कवि का उल्लास यद्यपि सर्वत्र ज्यों का त्यों बना हुआ है, किन्तु प्रकृति और मानव के तादात्म्य का सबसे सुन्दर निदर्शन कवि का **'मेघदूतम्'** है। प्रकृति और मानव के इस अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को महाकवि कालिदास ने सदैव आवश्यक एवं सुखद माना है। इसीलिए **'पूर्वमेघ'** में प्रिया–विरह–दग्ध 'यक्ष' सृष्टिसौन्दर्य के सान्निध्य में अपने विधुर हृदय को आश्वासन देता है और **'उत्तरमेघ'** में प्रकृति के संयोग में अपनी प्रियतमा के अतीत और भावी मिलन के स्वप्न देखता है।

'पूर्वमेघ' में बाह्यप्रकृति का अत्यन्त विशद चित्रण किया गया है, किन्तु उसमें मानवीय भावनाओं का छायातप भी सम्मिश्रित है, **'उत्तरमेघ'** में मानव हृदय का मार्मिक चित्रण है, किन्तु वह प्राकृतिक सौन्दर्य से परिवेष्टित भी है। इस काव्य में कवि ने प्रकृति और प्रेम दोनों की महिमा का स्तवन किया है और यह निर्णय कर सकना कठिन है कि किसकी व्यंजना अधिक सुन्दर हुई है। उत्तरभारत की प्राकृतिक सुषमा का इसमें अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। प्रकृति और प्रेम के काव्य के रूप में इस कृति का सर्वाधिक महत्त्व है।

'रघुवंशम्' में भी कवि ने मानव और प्रकृति के इस सम्बन्ध को अक्षुण्ण बनाये रखा है। इस काव्य में कवि ने मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से ही नहीं, राज्य से भी प्रकृति की घनिष्ठता का चित्रण किया है तथा भौतिक सभ्यता के प्रतीक नगर एवं प्राकृतिक जीवन के प्रतीक तपोवन के पारस्परिक सहयोग से उत्पन्न होने वाले कल्याणप्रद परिणामों का उल्लेख करते हुए यह दिखलाया है कि प्रकृति से वियुक्त मानव जीवन की समाप्ति किस प्रकार आध्यात्मिक अवनति, सामाजिक दुर्दशा एवं राजनीतिक पतन के रूप में हुआ करती है। रघुवंशम् महाकाव्य महाकवि की सूक्ष्म प्रकृति–पर्यवेक्षण एवं प्रकृति चित्रण की क्षमता का उदाहरण है। 'मेघदूतम्' में उत्तरभारत की प्राकृतिक सुषमा का चित्रण करने के उपरान्त कवि ने प्रस्तुत काव्य में दक्षिणभारत की प्रकृति का वन, नदी, पर्वतों आदि का सजीव अंकन किया है। तेरहवाँ सर्ग इसका अद्भुत उदाहरण है।

महाकवि कालिदास जी ने काव्यों तथा नाटकों में मानव जीवन में प्रकृति को अत्यन्त सम्मिश्रित रूप में प्रस्तुत किया है। उनके नाटक **'मालविकाग्निमित्रम्'** एवं विक्रमोर्वशीयम्' में प्राकृतिक शोभा का, एवं प्रणयभावना में प्रकृति के योग का सुन्दर निरूपण हुआ है। **'विक्रमोर्वशीयम्'** के चतुर्थ अंक में वर्षा का भावशील वातावरण राजा पुरुरवा की मनःस्थित से अनुरंजित है, किन्तु कवि की प्रकृति चित्रण विषयक सर्वोच्च प्रतिभा का दर्शन उसकी प्रौढ़तम कृति **'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'** में होता है। इस नाटक में आद्योपान्त मानवीय भावनाओं का चित्रण करते हुए कवि ने सर्वत्र प्रकृति और मनुष्य के मधुर सम्बन्धों की मार्मिक अभिव्यंजना की है। स्वयं शकुन्तला प्रकृतिकन्या है। उसका चरित्र धर्मारण्य की प्रशान्त छाया में

माधवीलता के साथ विकसित होकर पशु–पक्षियों के अकृत्रिम सौहार्द से आकृष्ट हुआ है। आश्रम के पशु–पक्षी उसके आत्मीय हैं। वृक्ष और लताओं से उसका सहोदरों जैसा स्नेह है। इसी कारण इन सब का भी शकुन्तला के प्रति उतना ही अनुराग है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी प्रकार के मानवीय आरोप के बिना ही, प्रकृति को प्रकृति रखकर ही उसे सजीव, प्रत्यक्ष, व्यापक एवं मनुष्य की अन्तरंग बनाकर नाटक के कार्य–व्यापार में प्रमुख एवम् आवश्यक स्थान दिया गया है। प्रथम अंक में ही नगर के कृत्रिम और तपोवन के शान्त स्वाभाविक वातावरण की तुलना की गई है। कथा का आरम्भ भी कण्व के तपोवन में हुआ है और अन्त भी मारीच के तपोवन में हुआ है। इस प्रकार बाह्यप्रकृति यहाँ से वहाँ तक नाटक के इतिवृत्त के पृष्ठभूमि में रही है। किम्बहुना प्रकृति के मार्मिक सन्देश का सुन्दर उद्घाटन इस कृति में उपलब्ध होता है।

इस प्रकार कालिदास जी की सभी कृतियाँ प्रकृतिमयी हैं। साथ ही प्रकृति के विविध स्वरूपों का समावेश कवि ने अपनी कृतियों में किया है। उन्होंने चाहे प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण किया हो, अथवा उद्दीपन, सर्वत्र उनका प्रकृष्ट प्रकृतिप्रेम स्पष्टतः उद्भासित होता रहा है। प्रकृति के शुद्ध स्वरूप का चित्रण करते हुए, चुने हुए उल्लेखों से प्रत्येक चित्र को पूर्ण कर देने में कालिदास जी सिद्धहस्त हैं। प्राकृतिक स्थितियों की सहज एवं संश्लिष्ट योजना से प्रत्येक चित्र अपनी पूर्णता में दृष्टिगोचर हो उठता है। प्रकृति वर्णन करते समय अनावश्यक विस्तार का उन्होंने सर्वत्र परिहार किया है। इसी संयम के कारण उनकी कृतियों में प्रकृति का विलक्षण एवम् अनिर्वचनीय सौन्दर्य झलक उठा है। उदाहरण स्वरूप **'विक्रमोर्वशीयम्'** में मध्याह्न के समय विविध जन्तुओं की चेष्टाओं का विवरण यहाँ पर प्रस्तुत है, जहाँ गर्मी से संतप्त 'मयूर' वृक्ष के शीतल आल–वाल में विश्रामार्थ बैठ रहा है, भ्रमर कर्णिकार की कली का मुख बेधकर उसमें छिपने जा रहा है, कारण्डव उष्णजल का परित्याग करते हुए तट पर खिली हुयी कमलिनी की छाया में जा बैठा है और क्रीडाभवन में पिंजर–स्थित 'शुक' जल की याचना कर रहा है।[6]

विविध जीवों की मध्याह्न–तापजन्य अवस्था एवं चेष्टाओं का विवरण प्रस्तुत करके महाकवि ने सूर्यातप की प्रखरता भली–भॉति अभिव्यंजित कर दी है।

बाह्यप्रकृति की सुषमा का सहृदय निरीक्षण करने के साथ–साथ कवि ने मनुष्य की अन्तःप्रकृति पर पड़ने वाले बाह्यप्रकृति के प्रभाव का भी अत्यन्त सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। किसी अन्य आलम्बन के प्रति उद्बुद्ध हुई आश्रय की भावस्थिति को उत्तेजित करने में प्रकृति जो योग देती है, उसे कवि ने ऋतुओं आदि के उद्दीपनरूप का चित्रण करके अत्यन्त कुशलता से अंकित कर दिया है। एकरूपा प्रकृति ही आश्रय के मन की क्षण प्रतिक्षण परिवर्तमान मनःस्थिति के साथ–साथ कहीं प्रिय और कहीं दुःखद प्रतीत होने लगती है। विरह–विधुर पुरुरवा को मेघों के कारण रमणीय दिवस असह्य प्रतीत होने लगता है, जैसा कि वह मन ही मन सोच रहा है कि एक ओर तो उस प्रियतमा से बिछुड़ने का असह्य दुःख और दूसरी ओर ऐसा सुहावना दिन, जो धूप न होने के कारण सुरम्य लग रहा है, एक साथ ही आ गए हैं।[7]

भावावेश में जड़–चेतन का भेद भूलकर पुरुरवा प्रकृति के विभिन्न अंगों से प्रश्नोत्तर करने लगता है। प्रकृति उसकी भावस्थिति के अनुरूप ही आचरण करती प्रतीत होती है। इस प्रकार प्रकृति को उद्दीपक रूप में चित्रित करके कवि ने अंतःप्रकृति और बाह्यप्रकृति के घनिष्ठ सम्बन्ध की व्यंजना सुचारु रूप से कर दी है।

प्रकृति को महाकवि ने कहीं भी मूक एवं निष्प्राण नहीं माना है। प्रकृति में उसने मानवीय आकृति एवं मानवोचित सुख, दुःख, सम्वेदना आदि की भावना एवं तदनुरूप आचरण का साक्षात्कार किया है। उन्हें पशु–पक्षी तो मानवीय संबंधों में व्यवहार करते दृष्टिगोचर हुए ही हैं, जड़–प्रकृति भी मानव का अनुकरण करती प्रतीत हुई है। उन्होंने प्रकृति को प्रधानतः प्रेमी की दृष्टि से देखा है और प्रकृति को प्रेयसी का स्थान देकर उसमें कामिनियों जैसे हाव–भाव का प्रत्यक्षीकरण किया है। इसीलिए उक्त प्रसंग में मधुश्री यदि मुग्धानायिका है, तो मलयपवन दक्षिणनायक है। प्रणयभावना के अतिरिक्त संवेदना, उत्कण्ठा, शोक आदि विभिन्न भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण कवि ने प्रकृति में किया है। आश्रम से विदा होती हुई शकुन्तला को तो आश्रम एवं उसके सहवासियों को छोड़ते हुए दुःख होता ही है, आश्रम की जड़ अथवा चेतन प्रकृति को भी उससे कम दुःख नहीं है, तभी तो हरिणियों ने कुशा के ग्रास मुख से उगल दिया, मयूरों ने नृत्य करना बन्द कर दिया और गिरते हुए पीले पत्तों वाली लताएँ मानों अश्रुमोचन करने लगीं।[8] इस प्रकार महाकवि कालिदास के काव्य में प्रकृति निरपेक्ष पृष्ठभूमि अथवा उद्दीपनरूप में ही आयोजित नहीं हुई है, अपितु पात्र रूप में उसमें सक्रिय भाग लेने वाली भी है। अपनी कृतियों के काव्य सौदर्न्य को अधिकाधिक देदीप्यमान करने के लिए कवि ने उसके निस्सीम भाण्डार से अमूल्य रत्नों
को चुनकर उनकी अप्रस्तुतरूप में योजना की है। उनके प्रकृतिचित्रण वर्ण्य को उद्भासित करते हुए अपने सौन्दर्य से भी हमें प्रभावित कर देते हैं। कवि की दृष्टि में दृश्यप्रकृति में जो सौन्दर्य व्याप्त है, मानव–सौन्दर्य उसी का अंग है। इसीलिए प्रकृति से आदर्श स्थितियों का चयन करके कवि ने उसको अपनी सौन्दर्यानुभूति की व्यंजना का साधन बनाया है। मानवीय सौन्दर्य एवं प्राकृतिक सौन्दर्य में से अपेक्षाकृत कौन सा अधिक सुन्दर है, इसका निर्णय कर सकना कठिन है। पार्वती की रूपशोभा का चित्रण इसका प्रमाण है, जहाँ स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई और बालसूर्य के सदृश अरुणवस्त्र धारण किए हुये, वे पर्याप्त फूलों के गुच्छों से झुकी हुई चलती–फिरती लता के समान प्रतीत हो रहीं हैं।[9]

महाकवि कालिदास ने प्रकृति को मानव जीवन की शोधिका भी माना है। उनकी सूक्तियों का एक महत्त्वपूर्ण अंश प्रकृति सम्बन्धी तथ्यों का ही है। प्रकृति का परपरिग्रह–पराङ्मुखता का यह आदर्श कितना सुन्दर है, जहाँ दुष्यन्त कहता है कि जिस प्रकार चन्द्र केवल कुमुदिनियों को खिलाता है और सूर्य केवल कमलों को, उसी प्रकार संयमी जनों की वृत्ति भी परस्त्री परपरिग्रह–पराङ्मुख होती है।[10]

प्रकृति के साथ विम्ब–प्रतिविम्बभाव को प्रसुत्त करते हुए महाकवि कालिदास जी अपने महाकाव्य **'रघुवंशम्'** में ग्रीष्मकालीन दिन और रात का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अत्यन्त बढ़े हुए ताप वाले 'दिन' और अत्यन्त छोटी हुई 'रात्रि' आपस में झगड़ा करके अलग होकर बैठे पछताते हुए 'पति' और 'पत्नी' के समान प्रतीत हो रहे हैं।[11]

ग्रीष्मकालीन पुष्प चमेली के मकरन्द के लोलुप भ्रमर का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वनों में चमेली की सुगन्ध फैलाने वाली खिली हुई कलियों में से प्रत्येक पर बैठता हुआ भ्रमर गुन–गुनाते हुए, मानो उनकी गिनती–सी करने लगा है।[12] यहाँ खिले हुए पुष्पों पर बैठे हुए भ्रमरों को उनकी गिनती–सी करते हुए वर्णित करके कवि ने इस दृश्य को देखकर उद्‌बुद्ध हुई अपनी भावना का भी निरूपण कर दिया है। इसी प्रसंग में पराग से भरी हुई कुछ–कुछ फैली हुई अर्जुन की मंजरी, मनोहर गन्ध वाली आम्रमंजरी आदि का भी वर्णन कवि ने इसी उल्लास के साथ किया है,[13] किन्तु कवि ग्रीष्मऋतु के मनोरम एवं सौन्दर्य–समुज्ज्वल पक्ष का वर्णन मात्र करके ही नहीं रुक जाता है, अपितु सूखे हुए तालों एवम् आतप की असह्यता से आकुल जड़ एवं चेतन प्रकृति भी उसके भावों का आलम्बन बनी है। प्रकृति की रमणीयता पर गद्‌गद होने वाला कवि का हृदय उसके विकृत स्वरूप का अवलोकन करके दयार्द्र भी हुआ है। प्रकृति ने अपने शुद्ध स्वरूप में कवि को आकृष्ट किया है, भले ही वह उसकी ममतामयी मुस्कान रही हो, अथवा कोपमयी भ्रूभंगिमा।

सूर्योदय और सूर्यास्त के चिरन्तन एवं चिरनूतन सौन्दर्य का उनके स्वर्गीय राग के साथ वर्णन, महाकवि ने अत्यन्त सुन्दरता से किया है। दिवस के विभिन्न प्रहरों का वर्णन हमें उनकी प्रत्येक कृति में मिलता है। ये वर्णन प्रसंगप्राप्त हैं। अर्थात् आलम्बन की परिस्थित को अंकित करने वाले हैं, यथा रघुवंश में प्रप्यूष के वर्णनक्रम में कवि लिखता है कि प्रातःकाल में क्षीणप्रकाश वाले चन्द्रमा के कारण कुछ ही तारों वाली रात्रि के समान आपन्नसत्त्वा 'सुदक्षिणा' हल्की पीली एवं दुबली–पतली हो गयीं।[14]

प्रातःकाल वृक्षों के लाल–लाल किसलयों पर गिरन वाले तुहिनकणों का भी कवि ने अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। यथा, हार की उज्ज्वल मुक्ताओं के सदृश निर्मल ओस–बिन्दु, वृक्षों के लाल–लाल पत्तों पर गिरकर वैसे ही सुन्दर प्रतीत हो रही हैं, जैसे हँसते समय लाल ओठों पर पड़ी हुई दाँतों की चमक सुन्दर प्रतीत होती है।[15]

प्रातःकाल के साथ–साथ जीव–जन्तु अपनी–अपनी स्वाभाविक क्रियाओं में लग जाते हैं। प्रातःकाल के ही एक अत्यन्त सुन्दर स्वाभाविक चित्र को कवि ने एक स्थल पर उपमान स्वरूप भी प्रस्तुत किया है, जहाँ लव–कुश के गीत पर अश्रुमोचन करती हुई राम की सभा को महाकवि कालिदास ने उस वनस्थली के सदृश बताया है, जिसके वृक्षों से प्रातःकाल के समय ओस की बूँदें टप–टप गिरती रहती है।[16]

महाकवि का दृश्य–निरीक्षण भी अपने आप में पूर्ण है। संध्या होते ही पक्षियों का वासस्थान पर लौट आना और धुँए के कारण भूरे रंग के कपोतों का और धुँधला–सा प्रतीत होना, वस्तुतः ये सब प्राकृतिक सत्य हैं, किन्तु राजभवन से संयुक्त होने के कारण ही सम्भवतः दृश्य की स्वाभाविकता में कुछ कमी आ गई है, किन्तु वनगमन के प्रसंग में पशुओं की संध्याकालीन चेष्टाओं का चित्रण दृश्य को अत्यन्त स्वाभाविक बना देता है। 'रघुवंश' में कवि ने अस्त होते हुए सूर्य के साथ आश्रम लौटती हुई धेनु नन्दिनी का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है, जहाँ सूर्य की उस प्रभा ने और मुनि की उस धेनु ने, जो किसलयों के वर्ण जैसी अरुण थीं, अपने संचार से दिशाओं को पवित्र करने के उपरान्त, संध्या के समय विश्रामस्थल की ओर जाना आरम्भ कर दिया।[17]

संध्याकाल का आगमन होते ही वनस्थली की कालिमा शनैः शनैः सघन होने लगती है। ऐसे समय में महाराज दिलीप के गमन की चर्चा करते हुए कवि लिखता है कि छोटे सरोवरों में से बाहर निकलते हुए वराह यूथों को, निवासवृक्षों की ओर जाते हुए मयूरों को, बैठे हुए मृगों से युक्त हरी घास को और संध्या होने के कारण काले पड़ते हुये वनों को देखते हुये वे दिलीप चले जा रहे थे।[18]

ज्ञातव्य है कि प्रकृति सम्बन्धी कविसमयों से भी महाकवि कालिदास जी भली–भाँति परिचित हैं। यद्यपि अनुभव कविसमयों को मिथ्या सिद्ध करता है, फिर भी काव्यसौन्दर्य के लिए उन्होंने उनका यथास्थान प्रयोग किया है। उनकी कृतियों में वृक्षों, पशु–पक्षियों आदि को लेकर जिन कविसमयों का प्रयोग हुआ है, उन्हें कवि ने स्वानुभूत प्राकृतिक सत्यों के साथ इस प्रकार संयुक्त कर दिया है कि उनका विश्लेषण काव्यसौन्दर्य में व्याघात उपस्थिति कर देता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति और उसके रमणीय दृश्यों के प्रति महाकवि कालिदास का स्नेह एवं सहानुभूति अत्यन्त प्रगाढ़ है। उनकी दृष्टि में मनुष्यत्व की पूर्णता मनुष्य के प्रकृतिप्रेम में ही निहित है। साथ ही उन्हें विदित था कि मानव जीवन से सम्बद्ध होकर प्रकृति की कविता सजीव एवं स्पन्दनशील हो उठती है। जहाँ उन्होंने प्रकृति के सौन्दर्य–समुज्ज्वल पक्षों का रूप योजनात्मक चित्रण किया है, वहीं उन्होंने प्रकृति को मानवीय भावनाओं में योग देते हुए और मनुष्य के प्रति संवेदना से युक्त भी वर्णित किया है। उनकी प्रकृति मनुष्य की ही भाँति सचेतन एवं भावनाशील है। प्राकृतिकसौदर्य एवं मानवीयसौन्दर्य दोनों को उन्होंने एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करते हुए चित्रित किया है। अतः उनके काव्य में **मानवीय सौन्दर्य** 'प्राकृतिक सौन्दर्य' से उद्‌भासित हुआ है तथा **प्राकृतिक सौन्दर्य** 'मानवीय सौन्दर्य' से। प्रकृति और मानव के अनादि सम्बन्ध की जैसी विशद व्याख्या कवि ने अपने काव्यों में की है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। मानव–पुरुषार्थ की सिद्धि में प्रकृति की उपयोगिता के सन्दर्भ में महाकवि कालिदास की विलक्षण प्रतिभा की ओर संकेत करते हुए किसी ने सत्य ही लिखा है–μ

मनुष्याणां रक्षणे सम्यक् शिक्षा–संस्कार–साधने।
नूनमेकाकिनी दृष्टिः कालिदासस्य राजते।।

सन्दर्भ (REFERENCE)

1. पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रिय मण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आदौ वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्याः भवत्युत्सवः,
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।। अभिज्ञानशाकुन्तलम्।। 04. 09।।
2. गेटे की प्रशस्ति का संस्कृत पद्यानुवाद।μ
वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वे च यद्,
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणा मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोक–भूलोकयोः,
सौन्दर्यं यदि वांछसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम्।।
3. सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं,
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुरणां मण्डनं नाकृतीनाम्।। अभिज्ञानशाकुन्तलम्।। 01.19।।
4. Sri Aurobindo, Kalidasa p. 23
5. K. S. Ramaswami Shastri, Kalidasa : His Period, Personality and Poetry, p. 127.
6. ऊष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोर्मूलालवाले शिखी,
निर्भिद्योपरि कर्णिकारमुकुलान्यालीयते षट्पदः।
तप्तं वारि विहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते,
क्रीडावेश्मनि चैष पंजरशुकः क्लान्तो जलं याचते।। विक्रमोर्वशीयम्।। 02. 22।।
7. अयमेकपदे तया वियोगः प्रियया चोपनतः सुदुःसहो मे।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः।। विक्रमोर्वशीयम्।। 04. 10।।
8. उद्गलित दर्भकवला मृगी परित्यक्त नर्तना मयूराः।
अपसृत पाण्डुपत्रा मुंचन्ति अश्रूणीव लताः।। अभिज्ञानशाकुन्तल।। 04. 11।।
9. आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां, वासो वसाना तरुणार्करागम्।
पर्याप्त–पुष्पस्तबकावनम्रा, संचारिणी पल्लविनी लतेव।। कुमारसम्भव।। 03. 54।।
10. कुमुदान्येव शशाप्रः सविता बोधयति पप्रजान्येव।
वशिनां हि परपरग्रिहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ।। अभिज्ञानशाकुन्तल।। 05. 28।।
11. वृद्धातापो दिवसोऽतिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी।
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम्।। रघुवंशम्।। 16. 45।।
12.. वनेषु सांयतनमल्लिकानां विजृम्भणोद्गन्धिषु कुड्मलेषु।
प्रत्येकनिक्षिप्तपदः सशब्दं संख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार।। रघुवंशम्।। 16. 47।।
13. रघुवंशम्।। 16. 51–52।।
14. शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सा लक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन प्रचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी।। रघुवंशम्।। 03.02।।
15. ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु, निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे, लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम्।। रघुवंशम्।। 05. 70।।
16. तद्गीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली।। रघुवंशम्।। 15. 66।।
17. संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतंगस्य मुनेश्च धेनुः।। रघुवंशम्।।15. 66।।
18. स पल्लवोत्तीर्ण–वराह–यूथान्यावास–वृक्षोन्मुख–बर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन्।। रघुवंशम्।। 02. 17।।